Shikshan Sanshodhan : Journal of Arts, Humanities and Social Sciences ISSN: 2581-6241 Volume - 4, Issue - 11, Nov - 2021
Monthly, Peer-Reviewed, Refereed, Indexed Journal Impact Factor: 5.146
Received on : 15/11/2021 Accepted on : 29/11/2021 Publication Date: 30/11/2021

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के स्वदेशी आर्थिक चिन्तन का समीक्षात्मक विश्लेष्ण

सुनील कुमार
शौधार्थी, कैरियर पॉइंट यूनिवर्सिटी, जिला - हमीरपुर, हिमाचल प्रदेश -176041
Email: sunilsharmadfzo@gmail.com

सारांश: *प्रस्तुत शोध प्रबंध में पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के द्वारा दिए गये 'स्वदेशी आर्थिक चिन्तन' का समीक्षात्मक विश्लेषण किया गया है। पंडित जी मानते थे कि कोई भी आर्थिक मॉडल सम्पूर्ण विश्व के लिए एक सा नहीं हो सकता। हर देश की अपनी अलग-अलग परिस्थितियाँ होती हैं। किसी भी देश के आर्थिक विकास में वहां की संस्कृति, भौगोलिक स्थिति, भाषा, संसाधनों और विचारों का प्रभाव रहता है। पंडित दीनदयाल जी का आर्थिक चिन्तन इन सब घटकों को साथ लेकर चलने वाला 'स्वदेशी आर्थिक चिन्तन' है। इस सिद्धांत के मूल में 'एकात्म मानववाद' है, जो अपनी प्राचीन संस्कृति, सभ्यता, पांरपरिक नैतिक मूल्यों का समावेश है। यह सिद्धांत पाश्चात्य विज्ञान को तो कुछ हद तक सही मानता है, परन्तु पाश्चात्य संस्कृति को पूर्ण रूप से नकारता भी है। 'स्वदेशी आर्थिक चिन्तन' भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए कितना संजीवनी का कार्य करता है, इस पर गहनता से शोध, विवेचना तथा समीक्षात्मक विश्लेषण किया गया है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी मानते थे कि समाजवादी, साम्यवादी और पूंजीवादी तीनों दर्शन व्यक्ति के एकांकी विकास की बात करते हैं, परन्तु व्यक्ति की समस्त जरूरतों का विकास किये बिना कोई भी विचार भारत के सर्वांगीण विकास में सहायक नहीं हो सकता। उन्होंने व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए 'एकात्म स्वदेशी आर्थिक नीति' का प्रतिपादन किया। वे यह भी मानते थे कि 'एकात्म मानववाद' तथा 'अंत्योदय' के दिव्य सिद्धांत को आत्मसात किये बिना मानव कल्याण के लक्ष्यों को भारतीयता के मूल स्वरुप में प्राप्त करना संभव नहीं है।*

मुख्य बिंदु : *स्वदेशी, आर्थिक चिन्तन, संधारणीय विकास, एकात्म मानववाद, भारतीय परंपराएं, कार्यसिद्धता, संस्कार क्षमता, बौद्धिक प्रखरता, अंत्योदय, सर्वांगीण विकास, मानव कल्याण ।*

1. प्रस्तावना:

पश्चिमी बुद्धिजीवियों की प्राय: यह धारणा रही है कि भारत में कोई भी व्यवस्थित अर्थशास्त्रीय चिन्तन परंपरा नहीं रही है तथा भारतीय चिन्तन मूल रूप से सामाजिक, आध्यात्मिक और कुछ हद तक राजनितिक रहें हैं। वे चाणक्य के अर्थशास्त्र को केवल अर्थ चिन्तन की एक किताब मात्र मानते रहे हैं, परन्तु भारत में आर्थिक चिन्तन की अवधारणायें युगों-युगों से चलती आ रही हैं। हमारे वेदों में भी आर्थिक चिन्तन को प्रमुख स्थान दिया गया है। इसके अलावा पुराणों, स्मृतियों, नीतियों, उपनिषदों तथा दर्शनों में भी इसे प्रमुखता दी गई है। भौतिकवाद से जुड़े पश्चिमी विद्वान अर्थशास्त्र के क्षेत्र में, जो अपना ढीन्डोरा पीटते रहे हैं। शायद उन्हें ज्ञान नहीं कि अर्थशास्त्रीय चिन्तन परम्परा भारत में सबसे अधिक पुरानी है। जब समस्त विश्व अपनी मूलभूत समस्याओं से जूझ रहा था, उस वक्त भारतीय दार्शनिकों तथा गणितज्ञों को दुनिया का भूगोल मालूम था।

प्राचीन भारतीय चिन्तन का इतिहास वैदिक काल से भी पूर्व का माना जाता है। इस इतिहास की दूसरी श्रेणी में वैदिक काल से लेकर मुगल काल को शामिल किया जा सकता है, परन्तु विडंबना यह रही है कि भारत कई वर्षों तक गुलामी का दंश झेलता रहा और विदेशीयों तथा कुछ विदेशी विचारधारा से ग्रसित भारतीय भौम्पुओं द्वारा यह भ्रम फैलाया गया कि प्राचीन भारतीय आर्थिक चिन्तन बहुत ही निम्न स्तर का है। कुछ विद्वानों ने इसे आदर्शवादी व अव्यवहारिक माना, लेकिन सत्य इसके बिलकुल ही विपरीत है। भारतीय आर्थिक चिन्तन व्यवहारिक ही नहीं अपितु अत्याधिक उपयोगी भी है। भारतीय चिन्तन का मूल मानव है व मानव के चारों ओर घूमता है, जबकि पाश्चात्य आर्थिक चिन्तन भौतिकवाद से जुडा हुआ है। प्राचीन भारतीय चिन्तन में आत्मा एंव मानव के सर्वांगीण विकास पर बल दिया गया है। भारतीय चिन्तन में माना गया है कि जीवन का मूल उदेश्य आत्मा का विकास करना है। जीवन इस उदेश्य की प्राप्ति का एक साधन मात्र ही है।

2. शोध उद्देश्य:

- **भारतीय अर्थव्यवस्था के विषय में उपाध्याय जी के 'स्वदेशी आर्थिक चिन्तन' पर प्रकाश डालना ।**
- **वर्तमान परिदृश्य में भारतीय अर्थव्यवस्था में उपाध्याय जी के 'स्वदेशी आर्थिक चिन्तन' की आवश्यकता ।**
- **स्वदेशी आर्थिक नीतियों के संदर्भ में पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के विचारों का मुल्यांकन ।**
- **पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी द्वारा लिखित पुस्तक 'भारतीय अर्थनीति विकास की एक दिशा' का समीक्षात्मक विश्लेष्ण ।**
- **पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के भारतीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए दिए गये विचारों की विस्तृत विवेचना ।**

3. शोध प्रविधि :

प्रस्तुत शोध-कार्य में निम्नलिखित अनुसंधान प्रविधियों का प्रयोग किया गया है:-

- पंडित दीनदयाल उपाध्याय शोध संस्थान नई दिल्ली से प्रकाशित तथ्यों का संकलन।
- पंडित दीनदयाल उपाध्याय स्मृति संस्थान नई दिल्ली से प्रकाशित तथा अप्रकाशित साहित्य का संकलन।

- भारतीय जनता पार्टी व पूर्व में रहे भारतीय जनसंघ नेताओं के साक्षात्कार।
- राष्ट्रवादी विचारधारा से प्रेरित अर्थशास्त्रियों के साक्षात्कार।
- राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के पदाधिकारियों एंव वरिष्ठ प्रचारकों से विस्तृत चर्चा।
- ग्रंथालयों में उपलब्ध ग्रंथों, शोध ग्रंथों एंव पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री का अन्वेषण।
- वेबसाइट, ब्लॉग एंव पत्रिकाओं इत्यादि में उपलब्ध सामग्री का अन्वेषण।

  - उपर्युक्त शोध कार्य में मौलिकता लाने हेतु वैज्ञानिक, एतिहासिक तथा विवरणात्मक विधि का प्रयोग किया गया है।

4. भारतीय स्वदेशी आर्थिक चिन्तन की आवश्यकता:-

15 अगस्त 1947 से पहले हुये उन सभी आन्दोलनों एंव प्रयासों का केवल एक ही ध्येय था और वो था स्वतंत्रता की प्राप्ति। आजादी के बाद यह ध्येय केवल एक हस्तान्त्रण बनकर ही रह गया, जो व्यवस्था अंग्रेज छोडकर गये थे, लगभग वही व्यवस्थाएं आगे भी जारी रहीं। पाश्चात्य अर्थशास्त्र के बल पर ही देश की नीतियों का निर्धारण होने लगा। अब देश में 'स्व' का अर्थ ही बदल गया। देश में आजादी के पूर्व के मुख्य मुद्दे स्वराज, स्वदेशी, स्वाबलंबन, खादी और ग्रामोद्योग, सांस्कृतिक सुचिता ये सब हाशिये पर डाल दिए गये।

विदेशी नीतियों तथा पाश्चात्य अवधारणाओं पर अब देश चलने लगा। आजादी से पूर्व के मुद्दों के प्रति हमारा दृष्टिकोण आर्थिक न होकर राजनितिक हो गया। अब पुराने और नये दृष्टिकोण में अंतर आ चुका था। राजनितिक दलों के कार्यक्रम एंव शासन की योजनायें सिर्फ एक ही उदेश्य को लेकर बनाई जाने लगीं कि अधिक से अधिक समय तक सत्ता में किस प्रकार रहा जाये। इस पर पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी अपनी पुस्तक 'भारतीय अर्थनीति-विकास की एक दिशा' पृष्ठ संख्या-03 पर सत्ताधारियों को आइना दिखाते हुए लिखते हैं कि "जीवन के विभिन्न आदर्शों के कारण ही नहीं, देश और काल की विभिन्न परिस्थितियों के कारण भी हमारे आर्थिक विकास का मार्ग पश्चिम से भिन्न होना चाहिए, किन्तु हम मार्शल और मार्क्स से बुरी तरह बंध गये हैं। अर्थशास्त्र के जिन नियमों की उन्होंने विवेचना की है, उन्हें हम शाश्वत मानकर चल रहे हैं। वे व्यवस्था-सापेक्ष है, जो यह जानते हैं, वे भी अपनी परिधि से बाहर नहीं निकल पाते। पश्चिम की आर्थिक सम्रद्धि ने उनकी अर्थोत्पादन पद्धति के विषय में, हमारे मन में, निरपवाद रूप से श्रद्धा उत्पन्न कर दी है। पाश्चात्य अर्थशास्त्रज्ञों ने इतना विवेचनात्मक साहित्य उत्पन्न किया है कि उसके भार से हम सहज ही दब जाते हैं। हम उससे उपर उठ नहीं सकते। इस अर्थविज्ञान में अनेक ऐसे विवेचन भी हो सकते हैं, जो देश-काल-व्यवस्था-निरपेक्ष हो तथा सबके लिए उपयोगी सिद्ध हो सकें। किन्तु खरे और खोटे की परख कोई पारखी ही कर सकता है। हमारी शिक्षा और दीक्षा इन पारखियों को उत्पन्न नहीं कर सकी हैं। हमारे अर्थशास्त्री पश्चिम के अर्थशास्त्र में पारांगत हो सकते हैं, किन्तु वे उस अर्थशास्त्र के विकास में कोई ठोस योगदान नहीं दे सके हैं। क्यूंकि भारत की अर्थव्यवस्था उस दृष्टि से उनके लिए न तो विचार-प्रावणय हो सकती हैं और न प्रयोग-भूमि। स्वतंत्र भारतीय अर्थशास्त्र के विकास की या तो उन्होंने आवश्यकता नहीं समझी या उसमें उन्होंने स्वयं को असमर्थ पाया। गांधीवादी तथा सर्वोदयवादी विचारधाराओं में जिस अर्थशास्त्र की चर्चा की गई, वह इस आवश्यकता को पूर्ण नहीं कर पाता। वह अनिश्चित ही नहीं, साम्प्रदायिक और एक आन्दोलन के माध्यम के रूप में जनता के सम्मुख आया है। पश्चिम की अर्थव्यवस्था की कुछ बुराइयों की ओर उसने भले ही सफल संकेत किया हो, किन्तु भारत के भावी का विधान करने का सामर्थ्य उसमें नहीं है"

दुर्भाग्यवश सत्ता हस्तान्त्रण का यह खेल बेरोक-टोक आज भी जारी है। कई सरकारें आईं और कई गईं, लेकिन देश को जो सर्वांगीण आजादी का गोरव मिलना चाहिए, आम नागरिक उससे आज भी महरूम है। हमारी शिक्षा, सोच, संस्कृति, ज्ञानविधियां, विज्ञान, इतिहास सभी में पाश्चात्य अवगुण आ चुके हैं। पूंजीवाद और साम्यवाद की जो अवधारणाओं को दूसरे देशों ने नकार दिया है, उन्हें आम जनमानस पर थोपा जा रहा है। आज अपना देश एक अजीब प्रक्रिया द्वारा अनुशासित हो रहा है, जिसे हम राजनितिक उपयोगितावाद कह सकते हैं। दूसरी तरफ पूरी दुनियां विचार-शुन्यता की लपेट में है। बाज़ार की शक्तियों व आर्थिक अधिपत्य द्वारा संचालित नई अवधाराणाओं का उद्गम हो रहा है। भारत भी इस समस्या से अछूता नहीं है।

हमारे देश के भी बुद्धिजीवी अब यह सोचने को मजबूर हो गये हैं कि शासन चलाने के लिए किसी अलग 'स्वदेशी आर्थिक चिन्तन' का होना कितना आवश्यक है। परन्तु दुर्भाग्य से "विचार-शून्यता" ने आधुनिकता को एक नई परिभाषा दे डाली है, जिसकी लाठी उसकी भैंस, परन्तु क्या यह आधुनिकता मानव को आंतरिक सुख दिला सकती है? क्या इस देश के करोड़ों लोग पश्चिमी अवधारणाओं के अनुरूप ही जीवन जीने को अभिशप्त हैं? क्या भारत की जनता के पास इसका कोई समाधान नहीं है? किन्तु ऐसा भी नहीं है इस समस्या को दशकों पहले भारत के युगऋषि, शिक्षाविद, अर्थशास्त्री, पत्रकार, लेखक, राष्ट्रीय आर्थिक चिंतक, संघ प्रचारक, भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष एंव दार्शनिक श्रद्धेय पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने दशकों पहले ही भांप लिया था। उन्होंने व्यष्टि और समष्टि के पाश्चात्य समीकरण को अमानवीय तथा अव्यवहारिक बताया था। उन्होंने व्यष्टि एंव समष्टि की एकात्मता से ही मानव की पहचान की थी। उन्होंने इस पहचान के लिए 'एकात्म मानव दर्शन' तथा 'भारतीय अर्थ-नीति विकास की एक दिशा' के रूप में व्याख्याएं प्रस्तुत कीं, जिसे हम सभी भारतीयों को जानना अत्यंत आवश्यक है।

5. मौलिक विचार की आवश्यकता:-

देश को आजाद हुये सात दशक से भी ज्यादा का समय हो गया है। परन्तु देश की उन्नति में कुछ ख़ास असर नहीं देखने को मिला है। इसका सबसे बड़ा कारण है हम देश की तरक्की के लिए विदेशी अर्थशास्त्र पर ही निर्भर रहे। ऐसा नहीं है कि भारत में आर्थिक चिंतक नहीं रहे

हैं। परन्तु ज्यादातर आर्थिक चिंतकों की शिक्षा-दीक्षा विदेशों में ही हुई, जिस कारणवश विदेशी अर्थशास्त्र का उन पर भी प्रभाव रहा। अत: उनका आर्थिक चिन्तन भी विदेशी नीतियों और रीतियों के इर्द-गिर्द घूमता रहा। किसी भी राष्ट्र को समृद्ध होने के लिए जरूरी है कि उसका अपना एक राष्ट्रीय व स्वदेशी आर्थिक चिन्तन हो। यह आवश्यक नहीं कि पाश्चात्य आर्थिक मॉडल भारत में भी फले-फूलें। उनकी आर्थिक अवधारणायें वहां की पृष्ठ भूमि के अनुरूप हो सकती हैं, लेकिन सम्पूर्ण विश्व के लिए एक ही जैसा आर्थिक मॉडल हो, यह संभव भी नहीं।

हर देश की आर्थिक नीति अपनी संस्कृति, भौगोलिक स्थिति, आवश्यकता, उपलब्धता, शिक्षा और संस्कार इन सब घटकों पर निर्भर करती है। इस पर पंडित दीनदयाल उपाध्याय अपनी पुस्तक 'भारतीय अर्थनीति विकास की एक दिशा' में लिखते हैं कि "हम अपने जीवन दर्शन का विचार कर भारतीय अर्थव्यवस्था का मौलिक निरूपण करें तथा आज की समस्याओं को यथार्थ की कंटकाकीर्ण, उबड़-खाबड़ किन्तु ठोस भूमि पर खड़े होकर सुलझाएं भारत के 'स्व' का साक्षात्कार किये बिना हम अपनी समस्याओं को सुलझा नहीं पाएंगे। यदि किसी क्षेत्र में संयोगवश थोड़ी-बहुत सफलता मिल भी गई, तो उसका परिणाम हमारे लिए हितकर नहीं होगा। हम प्रानुकरण की ओर अधिक प्रवृत होंगे। अपने स्वत्व और सामर्थ्य के विकास के स्थान पर परावलंबन का भाव हमारे मन में घर कर जायेगा। आत्महीनता का यह भाव घुन की तरह राष्ट्र की जड़ें खोखली कर देगा। इस प्रकार जर्जर-मूल राष्ट्र कभी झन्झावतों में खड़ा नही रह सकता। यदि हमें देश का विकास करना है तो इस प्रश्न का अंतर्मुख होकर विचार करना ही होगा। यदि उसमें कुछ देर भी लगे तो भी वह स्थाई एंव सर्वहितकर हल होगा"

6. पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का स्वदेशी आर्थिक चिन्तन :-

अर्थनीति के सवंद्ध वक्तव्यों व लेखों में समय-समय पर लिये गये सरकारी निर्णयों पर पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते थे। सामान्यत: अर्थनीति के क्षेत्र में वे पाश्चात्य नकल को बुरा मानते थे। हमारी व पाश्चात्य परिस्थितियों में बहुत फर्क है। अत: हमें अपनी "अर्थनीति का भारतीयकरण" करना ही होगा।

पूंजीवादी एंव साम्यवादी व्यवस्थाओं से त्रस्त विश्व को उन्होंने "एकात्म मानववाद" दर्शन का सिद्धांत दिया, जो न केवल व्यक्ति जीवन से लेकर सम्पूर्ण मानवजाति का चिन्तन है, बल्कि एक संधारणीय विकास का सर्वभौमिक व शाश्वत मॉडल भी है। पंडित जी ने अपने जीवन में राष्ट्र चेतना तथा राष्ट्र की विभिन्न समस्याओं को लेकर कई लेख तथा पुस्तकें लिखीं, जिसमें भारतीय अर्थव्यवस्था के उपर उनकी पुस्तक थी "भारतीय अर्थनीति विकास की एक दिशा" इस पुस्तक में स्वदेशी अर्थशास्त्र का वर्णन मिलता है। इसके आलावा उनकी कृतियां हैं:- जगत गुरु शंकराचार्य, चन्द्रगुप्त मौर्य, अखंड भारत, बेकारी की समस्या और उसका हल, टैक्स या लूट, विश्वासघात, जनसंघ सिद्धांत, राष्ट्रजीवन की समस्याएँ, अमेरीकी आनाज पी.एल. 480, एकात्म मानववाद, इसके आलावा और भी कई पत्र-पत्रिकाओं, भाषणों आदि में वे राष्ट्र चिंतन पर अपने विचार देते रहे।

पंडित दीनदयाल जी ने एकात्म मानववाद, एकात्म अर्थनीति, पूंजीवाद, विकेंद्रीकृत अर्थव्यवस्था, मशीनीकरण का निषेध, सहकारी खेती का निषेध, विदेशी पूंजी और अर्थसंस्कृति आदि विषयों पर अपने विचार प्रकट किये।

7. एकात्म अर्थनीति:

प्रत्येक अर्थव्यवस्था का मुख्य उद्देश्य अपने नागरिकों को समृद्ध एंव सुखी जीवनयापन की सुविधाएँ प्रदान करना रहा है। आर्थिक समृद्धि की प्राप्ति के लिए प्रकृति का अंधाधुंध दोहन किया जा रहा है। जमीन, जल, जंगल, जीवन और जीव में समन्वय होने की जरूरत होती है। परन्तु यहां आज यह एक-दूसरे के प्रतिद्वंदी बना दिए गए हैं। इस विवशता ने कई अविष्कारों को जन्म दिया है। आर्थिक संसाधनों के कई स्त्रोतों का पता लगा है तथा उत्पादन में कई गुणा वृद्धि हुई है। आर्थिक समृद्धि की दौड़ में कई अर्थव्यवस्थायें तो आगे निकल गईं हैं, तो कई पिछड़ गई हैं। परन्तु यह विकसित तथा अल्पविकसित दोनों ही तरह की अर्थव्यवस्थायें अलग-अलग समस्याओं से ग्रस्त हैं। इन समस्याओं के समाधान हेतु पूंजीवादी तथा साम्यवादी अर्थव्यवस्थायें पनपी। परन्तु यह अर्थव्यवस्थायें भी मानव जीवन के सर्वांगीण विकास करने में असफल रहीं। परिणामस्वरुप आज पूंजीवाद अपने मूल रूप में कहीं नहीं बचा है। दूसरी ओर साम्यवाद अपना भेष बदलता हुआ दुनिया का भ्रमण करके लगभग समाप्त हो गया है। चीन तथा रूस में भी अब पूर्ण रूप से साम्यवादी अर्थव्यवस्थाएं नहीं रहीं।

अगर बात पूंजीवाद की करें, तो सर्वप्रथम इसमें अस्तित्व के लिए संघर्ष होता है। अगर अस्तित्व बच जाये, तो सर्वोतम के लिए संघर्ष, सर्वोतम के बाद फिर प्रकृति का अंधाधुंध शोषण किया जाता है। इसके पश्चात किसी विशेष को व्यक्तिगत अधिकार प्राप्त हो जाते हैं और वही अधिकार प्राप्त व्यक्ति सम्राज्यवाद की ओर बढ़ता जाता है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का आर्थिक चिन्तन उपरोक्त अवधारणाओं से बिलकुल उलट है। वे पूंजीवाद तथा साम्यवाद दोनों अवधारणाओं को भारत के लिए बुरा मानते थे। वे प्रकृति के संतुलित दोहन के पक्षधर थे। वे प्रकृति का शोषण नहीं उसका उपयोग चाहते थे। उनका मनना था प्राकृतिक संपदा सीमित है; यदि उसमें उत्पादन को असीमित रूप से बढ़ाया जायेगा, तो प्राकृतिक संपदा लम्बे समय तक साथ नहीं देगी। वर्तमान अर्थव्यवस्था इसे असंतुलित कर रही है। हमें प्रकृति से उतना ही लेना चाहिए, जितने की हम पूर्ति कर सके। पंडित जी संधारणीय विकास के हिमायती थे। उनका मानना था की आर्थिक विकास का उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों तथा पर्यावरण को बिना हानि पहुंचाए वर्तमान व भावी पीढीयों दोनों के जीवन की गुणवता को कायम रखना होना चाहिए। हमें एक ऐसा विकास मॉडल बनाना चाहिए जो भावी पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करने की योग्यता को बिना कोई हानि पहुंचाये वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करे। ऐसा भी नहीं है कि वे प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग के खिलाफ थे, परन्तु उनका मनना था कि प्राकृतिक संसाधनों का कुशलतम प्रयोग होना चाहिए, जिससे दीर्घकालीन शुद्ध उपलब्धियां जैसे आय तथा रोजगार में वृद्धि, निर्धनता उन्मूलन, जीवन स्तर में वृद्धि आदि के लक्ष्य प्राप्त हो सकें।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी ने अपनी अर्थनीति में अर्थ चिन्तन, भारतीय संस्कृति में अर्थ, आधारभूत लक्ष्य, प्राथमिकतायें, कृषि, उद्योग, मनुष्य और मशीन, पूंजी और प्रबंध, माल-मांग और औधोगिक प्राथमिकतायें, छोटे और बड़े उद्योग, यातायात-व्यापार और समाज सेवाएं जैसे विषयों को विस्तारपूर्वक उठाया है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी मानते थे कि कुटीर उद्योग भारतीय अर्थव्यवस्था का मूल आधार है एंव विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था विकास के लिए जरुरी है। उनके अनुसार कुटीर उद्योग ही हर हाथ को काम दे सकते हैं। वे कहते थे कि हमें अपनी कृषि व्यवस्था को सुधारना होगा, उन्नत किस्म के बीजों का चयन करना होगा, खाद्यान्न व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण नहीं होना चाहिए। वे चाहते थे कि एक ऐसी अर्थनीति भारत में विकसित हो, जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था स्वावलंबन की ओर अग्रसर हो। उनके अनुसार मशीनें मानव की सहायक हो सकती हैं, प्रतिस्पर्धी नहीं। मशीनों के उपयोग से बेरोजगारी बढती है। इसलिए इनका उपयोग उचित मात्रा में ही होना चाहिए। पंडित दीनदयाल उपाध्याय स्थाई विकास के पक्षधर थे। उन्होंने अपनी पुस्तक "दो योजनायें वायदे अनुपालन आसार-1958" के जरिये सरकार की पहली तथा दूसरी पंचवर्षीय योजना की समीक्षा भी की एंव तार्किक विश्लेष्ण भी किया।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का स्वदेशी आर्थिक चिन्तन उनके ही 'एकात्म मानववाद' के सिद्धांत पर आधारित है। वे लिखते है कि "हमारी सम्पूर्ण व्यवस्था का केंद्र 'मानव' होना चाहिए, जो "यत् पिण्डे तत् ब्रह्मांडे" के न्याय के अनुसार समष्टि का जीवमान प्रतिनिधि एंव उसका अनुकरण है। भौतिक उपकरण मानव के सुख के साधन हैं साध्य नहीं। जिस व्यवस्था में, विभिन्न रूचिलोकों का विचार केवल एक औसत मानव अथवा शरीर, मन, बुधि व आत्मयुक्त अनेक ऐषणाओं से प्रेरित पुरुषार्थ, चातुष्टय्शील, पूर्ण मानव के स्थान पर एकांगी मानव का ही विचार किया जाये, वह अधुरी है। हमारा आधार एकात्म मानव है, जो एकात्म समष्टियों का एक साथ प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखता है। एकात्म मानववाद के आधार पर हमें जीवन की सभी व्यवस्थाओं का विकास करना होगा"

नि:संदेह उनका यह आर्थिक चिन्तन आत्मनिर्भरता बढाने वाला और निर्धनों का उथान करने वाला प्रतीत होता है। यह सिद्धांत निर्धन, वंचित और शोषित वर्ग को विकास की मुख्य धारा में लाने वाला सिद्धांत है।

8. पंडित दीनदयाल जी के स्वदेशी आर्थिक चिन्तन का महत्व:

पंडित दीनदयाल जी का 'स्वदेशी आर्थिक चिन्तन' देश के विकास में एक मील का पत्थर साबित हो सकता है। वास्तव में वर्तमान परिदृश्य में हमें ऐसे ही एक 'स्वदेशी आर्थिक चिन्तन' की आवश्यकता है। देश का संधारणीय विकास तथा मानव का सर्वागीण विकास हेतु हमें इस मॉडल को अपनाना ही होगा, नहीं तो इस अंधाधुंध विकास की दौड़ में हम मानवीय मूल्यों को खो देंगे। विदेशी विकास मॉडल का नतीजा हमारे ही समक्ष है। कहीं पर बेमौसम बरसात से बाढ़, तो कहीं अत्यधिक गर्मी से लू। जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण और मृदा प्रदूषण भी आज देश के लिए बहुत बड़ी आपदाएं बनती जा रही हैं। देश की आर्थिक तरक्की के लिए सडकों का जाल, उद्योगीकरण, मशीनीकरण और आत्मनिर्भरता यह सब उतना ही आवश्यक है, जितना प्रकृति का संरक्षण। अगर प्रकृति नहीं बची तो यह विकास विनाश में बदल जायेगा। अत: इसके लिए हमें हर गाँव को आदर्श व स्वावलंबी गाँव बनाना होगा। शहरों की ओर बढती आवादी को उनके गाँव में ही आत्मनिर्भर बनाना होगा। प्रत्येक गाँव में अंत्योदय के विचार को आम जनमानस तक पहुँचाना होगा। कृषि में सुधार करना होगा। 29 जनवरी 1962 में एक लेख में पंडित दीनदयाल जी खेती के बारे में लिखते हैं ।

"देश के आर्थिक विकास का आधार खेती है। क्योंकि भारत में 72 फीसद जनसँख्या की आय का मुख्य स्त्रोत खेती ही है और राष्ट्रीय आय का आधा हिसा खेती से आता है। इस कारण खेती को पहली प्राथमिकता दी जानी चाहिए"

"लेकिन हमारे नेता इसे प्राथमिकता देने की वजाए देश के उद्योगीकरण पर अधिक यकीन करते हैं। उन्हें लगता है कि देश की गरीबी की जड में कारखानों का न होना है और वो कुछ हद तक सही भी है, लेकिन उद्योग भी खेती के बिना नहीं पनप सकते"

"किसान धनी वर्ग बनेंगे, तभी उद्योगों के उत्पादों के लिए उचित बाज़ार मुहैया करवाया जा सकता है। अगर इसे नजर अंदाज किया गया तो असर उद्योगों पर ही होगा। इसी कारण दूसरी पंचवर्षीय योजना नाकाम हो गई"

यदि हम 2017-2018 के आर्थिक सर्वेक्षण की बात करें तो देश के 50 फीसदी कामगार कृषि पर निर्भर है और यह देश की जीडीपी का 17 से 18 फीसद है।

9. निष्कर्ष:

पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा दिया गया 'स्वदेशी आर्थिक चिन्तन' (भारतीय अर्थनीति : विकास की एक दिशा) देश के संधारणीय विकास प्रत्येक मानव के सर्वांगीण विकास के लिए एक महत्वपूर्ण चिन्तन हो सकता है। बस जरूरत है कि देश व प्रदेश की सरकारें इसे अमल में लायें। अगर यह 'स्वदेशी आर्थिक चिन्तन' सरकारी दस्ताबेज बन जाये, तो देश की तरक्की में आने वाली कई समस्याएं अपने आप ही खत्म हो जाएँगी। क्योंकि इस सिद्धांत के मूल में मानव है तथा यह विचार अपनी संस्कृति को साथ लेकर चलने वाला विचार है। संस्कृति, अर्थनीति और राजनीती यह सब एक-दूसरे के पूरक हैं न की प्रतिद्वंदी। अत: किसी भी देश की आर्थिक उन्नति के लिए इन तीनों में समन्वय होना बहुत जरूरी है।

पंदित दीनदयाल उपाध्याय जी का 'स्वदेशी आर्थिक चिन्तन' उस समय जितना उपयुक्त व तर्कसंगत था, उतना ही आज भी है। यह चिन्तन सार्वभौमिक व शाश्वत विचारधारा से जुड़ा है। इसके आधार पर ही उन्होंने राष्ट्र वेदना को समझने व सुलझाने का विचार दिया। चाहे प्रश्न

राजनीती का हो या अर्थनीति का, उन्होंने मानव मात्र से जुड़े सभी विषयों की समाधानयुक्त विवेचना अपने वैचारिक लेखों, पत्रिकाओं और पुस्तकों में की है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. महेश चन्द्र शर्मा, दीनदयाल उपाध्याय सम्पूर्ण वाडगम्य, खंड पांच, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 173-280.
2. हृदय नारायण दीक्षित, तत्वदर्शी दीनदयाल उपाध्याय, दीनदयाल उपाध्याय सेवा प्रतिष्ठान, लखनऊ, 1996, पृष्ठ 72-85.
3. शिवानन्द द्विवेदी, दीनदयाल उपाध्याय सिर्फ नाम नहीं बल्कि एक विचार, जागरण सवेरा, 01-03-2018, पृष्ठ 2.
4. महेश चंद शर्मा, दीनदयाल उपाध्याय: कर्तव्य एंव विचार, प्रभात पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1994, पृष्ठ 250-258.
5. शरत अनन्त कुलकर्णी, एकात्म अर्थनीति, सुरुचि प्रकाशन, केशव कुंज, झंडेवाला, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ 10-15.
6. दीनदयाल उपाध्याय (प्रथम संस्करण) दीनदयाल उपाध्याय की वाणी, जागृति प्रकाशन नॉएडा.
7. दीनदयाल उपाध्याय (1958) भारतीय अर्थनीति, विकास की एक दिशा, राष्ट्र धर्म प्रकाशन लिमिटेड लखनऊ.
8. दीनदयाल उपाध्याय (नौवां संस्करण, 2008) एकात्म मानववाद, जागृति प्रकाशन नॉएडा.
9. प्रो. मधु दान्द्वते (प्रथम संस्करण, 1978) गाँधी, लोहिया एंव दीनदयाल, दीनदयाल रिसर्च इंस्टिट्यूट, नई दिल्ली.
10. दीनदयाल उपाध्याय (प्रथम संस्करण 1968) इंटीग्रल ह्युम्निज्म, जागृति प्रकाशन, नॉएडा
11. दीनदयाल उपाध्याय (प्रथम जैको संस्करण, 1968) पोलिटिकल डायरी (हिंदी), जैको पब्लिसिंग हाउस, मुंबई
12. दीनदयाल उपाध्याय (मई, 2007) राष्ट्र चिन्तन, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ.
13. डॉ सरवण सिंह बघेल (श्रवण) (30 जुलाई 2021) पंडित दीनदयाल उपाध्याय जीवन दर्शन एंव एकात्म मानववाद दर्शन का रेखांकन, बीएफसी पब्लिकेशन.
14. कृष्णानंद सागर (2001), दीनदयाल उपाध्याय की वाणी, जागृति प्रकाशन, नॉएडा.
15. संजय द्विवेदी (2015), भारतीयता के संचारक पंडित दीनदयाल उपाध्याय, विजडम पब्लिकेशन.
16. नरेंद्र शिवाजी पटेल (2021), पंडित दीनदयाल उपाध्याय: व्यक्तित्व, कृतित्व व नेतृत्व, बीएफसी पब्लिकेशन.
17. भालचंद्र कृष्णाजी केलकर (2016) पंडित दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन, सरुची प्रकाशन, दिल्ली.

आलेख/पत्रिका सूची :-

1. दिलीप अग्निहोत्री, दीनदयाल उपाध्याय के विचार और दर्शन आज भी प्रासंगिक, प्रभा साक्षी, डेलीहंट, 25 सितम्बर, 2018, पृष्ठ 1-2.
2. डॉ कुलदीप चंद अग्निहोत्री, दीनदयाल उपाध्याय चिन्तन की प्रासंगिकता, प्रवक्ता.कॉम, 01-03-2018, पृष्ठ 3.
3. दीनदयाल उपाध्याय (24 अगस्त 1953) अखंड भारत: ध्येय और साधन, पांचजन्य.
4. दीनदयाल उपाध्याय (श्रवण शुक्ल, वि.सं. 2005, जुलाई-अगस्त 1948) यात्रा से पूर्व, पांचजन्य पृष्ठ 9
5. दीनदयाल उपाध्याय (05 जनवरी 1959) हमारी अर्थनीति का मूल आधार, पांचजन्य.
6. दीनदयाल उपाध्याय (22 जून 1959) कांग्रेस के 'समाजवादी नारे' से ही कम्युनिस्ट के पैर जमे, पांचजन्य.
7. दीनदयाल उपाध्याय (22 जून 1959) केरल और जनसंघ, पांचजन्य.
8. दीनदयाल उपाध्याय (02 जनवरी 1959) समाजवाद, लोकतंत्र अथवा मानववाद, पांचजन्य.
9. दीनदयाल उपाध्याय (कार्तिक पूर्णिमा, वि. सं. 2005, अंक-6): चिति-2, राष्ट्र धर्म .
10. दीनदयाल उपाध्याय (कार्तिक शुक्ल वि.सं. 2005) राजनितिक आय-व्यय, पांचजन्य.
11. दीनदयाल उपाध्याय (शरद पूर्णिमा वि.सं. 2006 अंक-1) राष्ट्र जीवन की समस्याएँ, राष्ट्र धर्म.
12. दीनदयाल उपाध्याय (भद्रपद कृष्ण-09 वि.सं. 2006) जीवन का ध्येय, पांचजन्य.
13. दीनदयाल उपाध्याय (विजय दशमी विशेषांक वि.सं. 2006) मानव की स्थिति और प्रगति, पांचजन्य.
14. दीनदयाल उपाध्याय, (21 जनवरी 1962) (चुनाव विशेषांक, पृष्ठ 41 'मताधिकार कागज का टुकड़ा नहीं, लोकाज्ञा है', पांचजन्य.
15. एकात्म भारतीय अर्थ चिन्तन, सितम्बर-2016, पृष्ठ संख्या-3, मातृवंदना.